RJPP, Vol. 15, No. 2, 2017, ISSN (P) : 0976-3635, (e) :2454-3411, Impact Factor 4.0000 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 43279

सु–शासनः व्यवस्थात्मक संरचनाओं के सन्दर्भ में

डॉ0 निवेदिता कुमारी
उपाचार्य एवं विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान विभाग ,
गिन्नी देवी मोदी गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज, मोदीनगर

सारांश

सु–शासन की स्थापना के लिये व्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर इसके मानकों को लागू किया जाता हैं। कार्यपालिका, विधानपालिका, न्यायपालिका और संचार माध्यम इसकी स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, साथ ही समाज के लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन भी होते है। सु–शासन के तत्वों को जब हम अपनी संस्थाओं में देखते हैं तो इनके कार्यात्मक रूप ही इनकी स्थापना को सिद्व करते है। भारत के सन्दर्भ में सु–शासन को चारों व्यवस्था केन्द्रों–व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया और समाज व व्यक्ति की मनोस्थिति के सन्दर्भ में समझ कर स्थापित करना होगा। सु–शासन के लिए आवश्यक तत्वों को जीवन शैली में ढालकर ही उसे स्थापित किया जा सकता है। सु–शासन को कार्यरूप देने के लिए इसके सैद्वान्तिक पक्ष से अधिक व्यवहारिक पक्ष को शासन–प्रशासन व समाज की कार्यशैली में स्थापित करना आवश्यक है।

शोधपत्र का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

डॉ0 निवेदिता कुमारी, ''सु–शासनः व्यवस्थात्मक संरचनाओं के सन्दर्भ में'', RJPP 2017, Vol. 15, No.2, pp. 111-116
http://anubooks.com/?page_id=2004
Artcile No. 16(RP565)

प्रस्तावना

'मानव जीवन को स्वच्छ, सुन्दर और स्वस्थ बनाने के लिए व्यवस्था का 'सु' अर्थात् अच्छा करने की आवश्यकता होती है'– आदिकाल से यही चिन्तन व शासन का आधार भी रहा है और आदर्श भी। दार्शनिक आधार पर यह धारणा सदैव ही आदर्शों की प्रेरणा रही है। प्रस्तुत –लेख मेव्यवहारिक पहलूओं को सु–शासन के सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

मानव निरपेक्षतः स्वतंत्र वैयक्तिक सत्ता के रूप में धरती पर जन्म लेते है और वे अपनी अपरिहार्य उत्तरजीवन– आवश्यकताओं से बाध्य एवं प्रेरित होकर एक समाज के रूप में इकट्ठे होकर एक सामाजिक जीवन का रूप ग्रहण कर लेते हैं। परिस्थितिवश स्वभावतः समाज का जन्म जीवन के प्रारम्भ से ही हो गया था। शासन कला का क्षेत्र इसी सामाजिक जीवन की आवश्यकता व जन्म मानव के उत्तर जीवन से संबद्ध सामाजिक संस्थानों के समुचित परिचालन–संचालन से संबन्धित है। अध्ययन की दृष्टि से शासन की दो अवधारणाएँ एवं क्षेत्र रहे हैं– (1) प्राकृतिक कानून का क्षेत्र, (2) मानव निर्मित कानून का क्षेत्र। प्राकृतिक कानून सदैव एक जैसा बना रहता है, वह अपरिवर्तनशील है, जबकि मानव निर्मित कानून का स्वरूप शासन आवश्कताओं और उपलब्धताओं के अनुरूप देश और काल एवं परिस्थितियों के अनुसार सर्वथा परिवर्तित होता रहता हैं, जो सैद्धान्तिक रूप से अच्छाई एवं सु–व्यवस्था की ओर अग्रसर होता है। सु–शासन की स्थापना समाज के विकास व इसके संकट से निपटने का एक मात्र उपाय है।

मानव इतिहास के प्राचीन और मध्य युग में शासन व प्रशासन व पूर्णतः हमलावरों, राजाओं और निरकुंश शासकों के हाथों में था तथा आम लोगों को इससे कुछ भी लेना देना नहीं था, सिवाय इसके कि उनको आज्ञा का पालन करना है और अपने जीवन की रक्षा हेतु शासक का गुणगान करना है। प्रजातात्रिंक शासन पद्धति के प्रादुर्भाव के बाद शासन क्षेत्र का व्यापक रूप से विस्तार हुआ, इसमें आम नागरिकों, सामाजिक संस्थाओं और संगठनों, विधायिका एवं कार्यपालिका, संचार माध्यमों – प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रॉनिक, उद्यामियों, सभी राजनीतिक दलों, दबाव–समूहों को इसमें भागीदारी निभाने का अवसर प्राप्त हुआ। सु–शासन के निष्पादन और उसे साकार करने में अपना सहयोग देने और अपने उत्तरदायित्व को रचनात्मक रूप से निभाने का मौका मिला। परन्तु यह विस्तार मात्रात्मक अधिक हुआ गुणात्मक नहीं। अतः शासन सु–शासन न रह कर कु–शासन में परिवर्तित होता चला गया। इसके लिए सरकारीतन्त्र ही दोषी नहीं है, बल्कि सभी सम्बन्धित पक्षों के प्रशासन की नाकामी में अपने वांछित उत्तरदायित्व को नहीं निभा पाने के कारण यह स्थिति बनी है। केवल सरकार को दोषी ठहराकर बाकी गैर सरकारी–सामाजिक संरचनाएँ व नागरिक पक्ष अपने को सही साबित नहीं कर सकते हैं। परिणामतः इस स्थिति में सु–शासन पर विचार–मंथन शुरू हुआ जो क्रिया– प्रतिक्रिया के नियम के अनुसार स्वाभाविक था। समाज में शासन की अवधारणाएँ निहित होती हैं और समाज का स्वरूप शासन के अनुरूप ढलता है तथा शासन भी समाज के स्वरूप को व्यक्त करता है। समाज के समुचित विकास, उसकी शांति एवं समृद्धि के लिए सु–शासन की पहली शर्त सु–प्रशासन का आचरण होती है। सामान्यतः जब अच्छे या बुरे प्रशासन की बात होती है तो इसका अर्थ कार्यपालिका से होता है।

सु–शासन में कार्यपलिका के अतिरिक्त दो अन्य आधार स्तम्भ होते है जो सु–शासन के स्वरूप को निर्धारित करने में न केवल भागीदार होते हैं बल्कि महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं, वे हैं –आम नागरिक एवं संचार माध्यम। शासन के अच्छे या बुरे स्वरूप को निर्धारित करने में सभी का योगदान होता है, यद्यपि वह कम या अधिक हो सकता है।

सैद्धान्तिक रूप से सु–शासन के अनेक मापदण्ड होते है, जिनके आधार पर उसकी संरचनाएँ बनाई जाती हैं और विकसित की जाती हैं। आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त ने मानव जीवन के सभी पहलूओं को स्वयं से संचालित किया हैं। इसने सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ व्यवस्था की सभी संरचनाओं व संस्थाओं को भी परिवर्तित किया है। इसी सन्दर्भ में अनेक बुराईयाँ भी व्यवस्था के स्तर पर सम्मिलित होती चली गयी जैसे संस्थाओं का निहितार्थ के लिए प्रयोग, अप्राकषतिक रूप से सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन, जनसंख्या के कुछ भाग के लिए समस्त संसाधनों का उपयोग, लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के बीच लुप्त होता लोकतन्त्र का आधार, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक व निजी जीवन से लुप्त होती मूल्य– आधारितजीवन शैली। 'सु–शासन' जो सदैव ही 'व्यवस्था' की अवधारणा में समाहित रहा है, को आज विधिवत रूप से स्थापित करने की आवश्यकता है। प्लेटो व चाणक्य से लेकर निवर्तमान राजनीतिक वैज्ञानिकों तक सभी के दर्शन व चिन्तन में सु–शासन की अवधारणा किसी न किसी नाम से विद्यमान रही है। इनमें आदर्श राज्य, उपयोगिता वाद, रामराज्य, बुर्जआ वर्ग, लोकतन्त्र, कल्याणकारी राज्य आदि सिद्वान्तों में सु–शासन सम्मिलित है जो समाज के लक्ष्यों को पाने के लिए कार्य करता है। उपरोक्त सभी सिद्वान्त सु–शासन के तत्वों – विकास, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, जिम्मेदारी, भागेदारी, कानून का शासन, सक्षमता व प्रभावीपन और खुलेपन को स्थापित करने के विभिन्न उपाये भी बताते हैं। यहाँ इनके सैद्धन्तिक विश्लेषण के स्थान पर सु–शासन से सम्बन्धित कुछ व्यावहारिक पहलुओं पर ध्यान आकर्षित किया गया है जो संरचनाओं व संस्थाओं के साथ–साथ इनको संचालित करने वाले लोकतन्त्र में लोकतान्त्रिक मूल्यों के साथ भागीदारी, समानता, योजना–दृष्टि, पारदर्शिता, समयबद्धता, भ्रष्टाचार उन्मूलन के उपायों को अपनाना सु–शासन के लिए अति आवश्यक है। ये उपाय व्यैक्तिक आधार पर ज्यादा सम्बन्धित है।

सर्वप्रथम, व्यक्ति जो सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था की केन्द्रीय इकाई होता है और सभी संरचनाएँ उसी के इर्दगिर्द घूमती हैं, को सु–शासन के वाहक के रूप में स्वीकार करना होता है। आधुनिक लोकतान्त्रिक संविधानों के युग में 'सरकार' के स्वरूप और 'अधिकार' की अवधारणा को केन्द्रिय स्थान प्राप्त है। 'अधिकार' की एक तरफा व अति–आधिकारिक व्याख्या ने कर्तव्यों को नेपथ्य में कर दिया है। इस स्थिति ने सु–शासन के सिद्वान्त को विकृत एवं कुंठित स्थिति में पहुँचाने में बहुत योगदान दिया है। सरकार को पूर्णतः प्रशासन का पर्याय बना दिया है, जिसके फलस्वरूप लोग लोकतातिन्त्रक व्यवस्था और उनके संगठन संचालन और परिचालन में अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की अनदेखी कर सरकार और शासन की विफलतओं में अपनी हिस्सेदारी को नकार देते है। ईमानदारी की प्रचलित एक तरफा अवधारणा ने भी सु–शासन के निमित्त को काफी क्षति पहुँचायी है। इस कहावत ने कि 'ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है', ईमानदारी

के विस्तार और उद्देश्य को अत्यंत संकीर्ण बना दिया है, क्योंकि यह सरकारी संरचनाओं व शासन के लिए स्थापित कहावत बन गयी है न कि आचरण शैली।व्यक्ति ने स्वयं को इससे पथ्थक कर लिया है।यह एक विडम्बनापूर्ण एवं विरोधाभासी स्थिति है क्योंकि व्यक्ति ही संरचनाओं का मूल है और वह 'ईमानदारी की नीति' में स्वयं को 'सु—शासन की संरचनाओं' से अलग कर लेता है। अतः ईमानदारी को नीति के रूप में नहीं अपितु जीवन की सर्वोच्च पद्धति के रूप में अपनाया जाना चाहिए। सरकार एवं समाज सेवा में ईमानदारी को नीति के रूप में अपनाने से सु—शासन की अवध् ाारणा को काफी नुकसान पहुँचा हैं। अतः सु—शासन का उद्देश्य समाज के समक्ष चुनौतियों के लिए व्यैक्तिक आधारित संरचनात्मक उपाय प्रस्तुत करना है। संरचना व संस्था व्याक्ति के बिना स्वयं में शून्य होती है।

सु—शासन के स्वरूप के निर्धारण में शासन की महत्वपूर्ण संरचना—विधानपलिका की अहम भूमिका होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि उसके सदस्य जनता के बीच से हो, जिन्हें जमीनी वास्तविकताओं की गहन जानकारी और समझ हो, जो ऐसी विधियों को बनाने पर बल दें, जो आम जनता की समस्याओं, आवश्कताओं व अपेक्षओं के समाधान में सहायक हो। इसके लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन निष्कपट और पारदर्शी हो एवं धन के प्रभाव से मुक्त हो। राजनीतिक दलों को अपने उमीदवारों का चुनाव आर्दशवादिता के आधार पर करना होगा क्योंकि आदर्श ही हमें सुचिता की और ले जाते है। आपराधिक पृष्ठभूमिवालों, भ्रष्ट आचरण वालों और धन के प्रलोभियों को विधायिकाओं की सदस्यता से अलग रखा जायें। विधायिकाओं में सत्ता पक्ष व विपक्ष रचनात्मक रवैया अपनाये, केवल विरोध के लिये विरोध न करें व राजनीतिक स्वार्थों के चलते निर्णय—निर्माण न करें। दोनों पक्ष सत्ता व विपक्ष राष्ट्रीय हितों को प्राथामिकता दें। राजनीतिक लाभ उठाने और विरोध के नाम पर विरोध करते रहने से राष्ट्रीय हितों का अहित होता है। इस तथ्य को प्रमुखता देनी होगी कि राष्ट्रीय हितों का कदापि राजनीतिक करण नहीं किया जाना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य से अक्सर हमें ऐसे उदाहरण आसानी से दिखने को मिल जाते है। राष्ट्रीयहित व गुणात्मक कार्यशैली की मनः स्थिति के साथ अगर विधायिकाओं में कार्य सम्पादन व दायित्तवों के निर्वाह किये जायेंगे तो यह सु—शासन के लिये हितकर होगा। रचनात्मक विरोध प्रजातन्त्र की आत्मा एवं सु—शासन का प्राण है। इससे उत्तरदायित्व, जवाबदेही, पारदर्शिता, प्रभावी व सक्षमता की स्थापना होती है। अतः आवश्यक है कि विपक्ष कार्यपालिका पर सतत् एवं जागरूक निगरानी रखें। लेकिन साथ में यह भी जरूरी है कि ऐसा करने में उसकी नियत निरंतर रचनात्मक पूर्वाग्रहों से दूर हो। राजनीतिक व संसदीय विशेष अधिकारों का प्रयोग सु—शासन के विरोध नहीं होना चाहिए।

सु—शासन की स्थापना एवं संचालन— परिचालन में सरकार के न्यायपालिका तष्तीय स्तम्भ का भी महत्वपूर्ण दायित्व सर्वविदित है। समाज प्रबन्ध में उसकी भूमिका अन्य संरचनाओं के सापेक्ष समान रूप से महत्व रखती है। वर्तमान परिवेश में इसका गुणात्मक और परिणामत्मक विस्तार हुआ है।संवैधानिक प्रशासन के सशक्तिकरण में न्यायपालिका ने अत्यन्त नैमित्तिक रूप से कार्य किया है। राष्ट्र के शासनिक ढ़ाँचे में न्यायपालिका को उच्च एवं निर्णायक स्थान प्राप्त

है। न्यायपालिका द्वारा दण्ड–न्याय पद्धति के प्रशासन व विवादों के निर्धारण में उच्चतर मानदण्डों की स्थापना की अपेक्षा की जाती है क्योंकि यही सु–शासन की कुंजी है। विधायी निकायों द्वारा विधि निर्माण पर न्यायपालिका की न्यायिक समीक्षा एक जागरूक नियन्त्रक के रूप में काम करती हैं। न्यायिक समीक्षात्मक फैसले उसकी सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को अभिवयक्त करते हैं। सु–शासन के स्थापक के रूप में न्यायपालिका को ऊँचे मानदण्ड स्थापित करने होंगे। **इन मापदण्डों में त्वरित न्याय, निष्पक्ष न्याय, सत्ता व अन्य तत्वों से उचित दूरी आदि सम्मिलित है।** न्यायपालिका अपने निर्णयों से सु–शासन की स्थापना के प्रति जनता को आश्वस्त करने वाली सबसे श्रेष्ठ संस्थानिक संरचना हैं।

सरकार के तीसरे अंग के रूप में कार्यपालिका का मुख्य कार्यक्षेत्र प्रशासन हैं। जन–सुविधाओं, बुनियादी ढ़ाँचागत सुविधाओं, राष्ट्रीय सोच से दूर शिक्षाव्यवस्था, असक्षम स्वास्थ्य व्यवस्था, नौकरशाही की भ्रष्टता, अप्रभावी पुलिस व्यवस्था, निर्णयों में होने वाले अति विलम्भ आदि वे तथ्य है जो उपयुक्त प्रशासन की अनुपलब्धता की ओर संकेत करते हैं। सभी उपलब्ध कानून अच्छे दिशा निर्देश देते हैं, मगर सरकारी पदाधिकारियों को उपलब्ध कानून और नियमों के सन्दर्भ में उनका क्रियान्वन करना होता है। सरकारी पदाधिकारीजनता व शासन के बीच कड़ी का कार्य करते है। यह क्रियान्वन सु–शासन की स्थापना में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। यह प्रशासनिक अधिकारी एक व्यक्ति के रूप में शामिल होता हैं, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, जो कर्तव्यों के बोझ से अनभिज्ञ नहीं होता हैं। ईमानदारी जिसकी जीवन शैली होती है और सामाजिक उद्देश्य उसका लक्ष्य होता हैं। कानून का उद्देश्य ही सु–शासन का आधारभूत मंत्र होता है। प्रशासनिक मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप तथा राजनेता, अपराधी और नौकरशाह के त्रिकोण को जड़ से समाप्त किया जाना चाहिए। ऐसे तत्व सु–शासन और सामाजिक परिवेश को असीम क्षति पहुँचा रहे हैं। भ्रष्टाचार को सार्वजनिक व निजी जीवन शैली से पूर्णताः निकाला जाना चाहिए। इसके लिए मापदण्ड व उत्तरदायित्वों को प्रशासनिक संरचना के हर स्तर पर निश्चित करना होता है।

मीड़िया को प्रंजातन्त्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है और सु–शासन के क्षेत्र में इसकी सर्वोच्च भूमिका होती है। यह प्रशासन को भटकाव से बचाती है, विधायिका को व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराती हैं। विभिन्न संचार माध्यम व्यवस्था को जन आंकाक्षाओं, हितों, अपेक्षाओं प्रशासन की नीतिगत विफलताओं व सरकारी तन्त्र की कमियों से अवगत कराने का कार्य करते हैं। इस प्रकार संचार माध्यम शासन के प्रत्येक स्तर पर अपनी पैनी निगाह रखकर सु–शासन के लिए रास्ता बनाते हैं।

सु–प्रशासन तभी संभव है, जब सरकार के तीनों अंग, समाज के सभी लोग और मीडिया सभी शुद्ध मन से सहयोग करें, उपने दायित्वों को समझें और उनका पूरी तरह निर्वाह करें। अपने अधिकरों के प्रति सजग तो रहें, पर साथ ही अपने कर्तव्यो को नहीं भूलें और पूरी ईमानदारी से उनका पालन करें। दवा करने से तो बेहतर है कि रोग को होने ही नहीं दिया जाए, रोकथाम तो अपने हाथ की बात होती है। दूसरों को दोषी ठहराने में समय बर्बाद करने से सु–शासन सम्भव

नहीं है। उसे स्थापित के लिए हमें स्वयं उसके मापदण्डों को अपनाना होगा, अपने स्वार्थो को त्यागकर लक्ष्यों के प्रति समर्पण का भाव ही इस दिशा में सार्थक है। राजनीतिक नेतृत्व जब राष्ट्रीय हित व दीर्घकालीन चिन्तन को प्राथामिकता देते हुए नीतियों के क्रियान्वय की व्यवस्था करता है तो सु–शासन की स्थापना की ओर बढ़ता है।

सन्दर्भ सूची

1. माधव गोड़बोले, ''गुड गवरनेंस : नेवर ऑन इडियास रडार ''रूपा पब्लिकेशन प्राईवेट लिमिटेड 2014।

2. टी0 एस0 सुब्रम्यम, '' इडिया एट टर्निंग पांइट : दा रोड टू गुड गवरनेंस'', रूपा पब्लिकेशन प्राईवेट लिमिटेड 2014।

3. सेम ऐगरे,''प्रमोटिग गुड गवरनेंस प्रिसिपल्स, प्रक्टिससिज एण्ड प्ररसपैपिटव'' कामनवैल्थ पब्लिकेशन लंदन 2000।

4. सुरेन्द्र मुंशी,''बिज्जु पॉल अब्राहम, सोमा चौधरी,''द इंटलिजेन्ट पर्ससन गाइड टू गुड गवरनेंस,'' सेज पब्लिकेशन इडिया प्राईवेट लिमिटेड, 2009।

5. एस0 एस0 धालीवाल,'' गुड गवरनेंस इन लोकल सैल्फ गवर्नमेण्ट,'' दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नयी दिल्ली 2004

6. 'गवर्नेंस फॉर सस्टेनेबल हयूमन डवलपमैन्ट', ए यू. एन. डी. पी. पॉलिसी पेपर, यू. एन. डी. पी.,1997

7. इडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 2016।

8. जनरल ''इडियन पोलटिकल सांइस ऐसोशिएशन,'' 2015।

9. गिरिश्वर मिश्र,'' सु–शासन का स्वप्न, दुख का यथार्थ,'' लेख समाचार पत्र 10 जून 2017।